॥ ओ३म् ॥

मनु और मांस

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

बुद्धदेव

मनु आर मास

लेखक

ब्रह्मचारी बुद्धदेव

गुरुकुलीय साहित्यपरिषद्

गुरुकुल यन्त्रालय काङ्गड़ी में
नन्दलाल के प्रबध से मुद्रित तथा प्रकाशित।

प्रथमावृत्ति ५०० } सम्वत् १९७२ { मूल्य

* ओ३म् *

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ॥१॥

मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि ॥ २ ॥

आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमङ्गा-
न्मां मुञ्च वागुरिक यामि कुरु प्रसादम् ।
सीदन्ति शष्पकवलग्रहणानभिज्ञाः
मार्गावलोकनपराः शिशवो मदीयाः ॥३॥

आर्यजाति अहिंसकजाति है। मनु उसका पूज्य ऋषि तथा दण्ड विधाता है "यन्मनुरब्रवीत्तद्भेषजं भेषजतायाः" कह कर ब्राह्मण ने उस का अभिनन्दन किया है। सहस्रों मनुष्यों के कर्तव्याऽकर्तव्य के विवेक का आधार उस के वाक्यों पर है। ऐसे ग्रन्थ की विवेचना अवश्य होनी चाहिये। उस पर अत्याचार किसी सत्यप्रिय मनुष्य को सह्य नहीं हो सकता। यही कारण है कि मैं आज अपनी ✓निअनु- सार इस प्रश्न पर विचार करने उपस्थित हुआ हूं। कई प्रकार की बातें इस ग्रन्थ में पाई जाती हैं उन से यह सन्देह उत्पन्न होता है कि मनुस्मृति नाम से विख्यात ग्रन्थ में जो कुछ लिखा है वह सब कुछ मनु का है वा उस में कुछ उस के सिर मढा भी गया है। इस प्रश्न के सब भागों पर विचार करना इतने समय में दुःशक है। अतः

आज एक भाग पर ही कुछ विचार आपके सामने रखने का प्रयत्न करूंगा।

आज का विचार्य्य विषय यह है कि मनु में मांसविधान है वा नहीं। समुपलभ्यमान ग्रन्थ पर एक दृष्टि डालने से आपाततः तो यही बोध होता है कि कुछ कह नहीं सकते दोनों ही प्रकार की बातें देखने में आती हैं। परन्तु सूक्ष्म विचार से हम किसी परिणाम पर पहुंच सकते हैं। इस विचार में हमारा पक्ष कुछ भी हो इस विरोध का कुछ न कुछ उत्तर अवश्य देना होगा। अतः पहिले यही आवश्यक प्रतीत होता है कि हम इस प्रश्न पर विचार करलें कि विरोध के उत्तर हो कितने सकते हैं।

हमारी समझ में इसके दो उत्तर हो सकते हैं।

(१) विरोध है—

(२) विरोध नहीं किन्तु विरोधाभास है

विरोध है इस पक्ष के दो भाग हो सकते हैं।

(१) मनु मूर्ख वा उन्मत्त था अथवा दम्भी था—
[२) प्रक्षेप, अर्थात् भिन्न २ समयों में भिन्न२

मनुष्यों ने अपनी आवश्यकतानुसार उस में अपने अभीष्ट साधक भाग मिला दिये।

विरोध नहीं इस पक्ष के उपपन्न हो सकते हैं उन तीनों को ही किसी न किसी प्रकार विरोध का परिहार करना होगा उन में इसे भिन्न २ सम्प्रदाय के व्यक्ति ३ परिहार प्रस्तुत करते है वा करसकते हैं।

(१) उत्सर्गापवाद भाव

(२) परिसंख्या

(३) विकल्प

इन परिभाषिक शब्दों से शायद बहुत से सज्जन परिचित न हों इस लिए इनकी कुछ व्याख्या कर देनी उचित जान पड़ती है तथा उनके क्या नियम हैं यह भी बता देना उचित प्रतीत होता है।

उत्सर्गापवाद भावका अभिप्राय यह है कि पहिले एक सामान्य नियम General Rule बनाकर उस का अपवाद Exception बना दिया जाय जैसे मुख्याधिष्ठाता जी ने आज्ञा देदी कि वेदी (प्लेटफार्म) पर कोई महाशय न आने पावे उसके पश्चात् यह नियम बना दिया कि जिन

के पास टिकट हों वह आजावें इसी प्रकार मनु महाराज ने नियम बना दिया कि मांस न खाना चाहिये उस के पश्चात् नियम बना दिया कि यज्ञ तथा श्राद्ध में खालेना चाहिए। यह है उत्सर्गापवाद भाव। इस का नियम यह है कि उत्सर्ग तथा अपवाद में सामान्य विशेष भाव अवश्य होना चाहिए यह नहीं हो सकता कि कोई आज्ञा दे कि कोइ यहां न आये तथा सब आजायें पर फिर उत्सर्गापवाद भाव बना रहे।

दूसरा पक्ष है परिसंख्या। परिसंख्या का अर्थ है कि यदि कहीं किसी बात का छूटना कठिन हो तो छुड़ाने के लिये शनैः २ छुड़ाया जाता है, तथा उस में नियम करते जाते हैं कि इतनी अवस्थाओं में इतनी बार ही उसे आज्ञा है फिर नहीं, शनैः२ नियम कड़े करके फिर अन्त को बिलकुल छुड़ा दिया जाता है। जैसे किसी की मद्य की आदत छुडानी हो तो पहिले दिन में दोबार फिर सप्ताह में विशेष दिनों पर फिर विशेष २ पर्वों पर अन्त को बिलकुल नहीं। इसमें भी सामान्य विशेष भाव अवश्य होना चाहिये तथा वस्तुतः इस पक्ष को हम विधान पक्ष नहीं कह सकते क्योंकि इस का उद्देश्य निषेध है तथा यह निषेध का साधन मात्र है।

तीसरा पक्ष विकल्प पक्ष है यद्यपि इस पक्ष का अनुयायी कोई देखने में नहीं आता तथापि यह भी एक पक्ष हो सकता है इस लिए इस का भी विचार करना आवश्यक है। विकल्प का अर्थ है कि दोनों ही विधि हों जैसे ब्रह्मचारी मुण्ड वा जटिल दोनों ही रह सकता है प्रथम तो यहां भी नियम है क्योंकि इस के दो अभिप्राय हैं

(१) मुण्ड जटिल के अतिरिक्त रूप में न रहे—

(२) जहां उष्ण हो वहां मुण्ड तथा जहां शीत वहां जटिल। इसके अतिरिक्त विकल्प में एक दूसरे पक्ष की निन्दा नहीं हो सकती, जहां विकल्प होगा वहां यह कदापि नहीं हो सकता कि एक स्थान पर तो जटा की इतनी प्रशंसा हो कि उस का फल १०० अश्वमेध के समान हो तथा मुण्ड होने की इतनी निन्दा हो कि उसके लिए प्रायश्चित्त विधान हो, तथा दूसरे स्थान में ठीक इसके विपरीत हो, विकल्प में दोनों ही पक्षों की प्रशंसा होनी चाहिए।

अब विचार करना चाहिए कि जो विरोध देखने में आता है वह इन में से किस नियम पर आश्रित है।

प्रथम देखना चाहिये कि क्या यहां विकल्प है?

उत्तर नहीं में देना होगा। अब देखना चाहिये कि मांस का विधान वा निषेध कहां कहां पर है मुख्यतः ४ स्थान हैं जहां हिंसा विषयक प्रश्न का कोई विचार है एक यज्ञ दूसरा श्राद्ध प्रकरण तीसरा भक्ष्याभक्ष्य चौथा प्रायश्चित्त विधान। यज्ञ प्रकरण में तो उत्सर्गापवाद भाव देखने में आता है। श्राद्ध प्रकरण में भी यही प्रतीत होता है किन्तु विकल्प नहीं क्योंकि वहां विरोध में सामान्य विशेष भाव है अब रहा भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण में देखना चाहिये यहां क्या है। देखने को तो यहां भी उत्सर्गापवाद भाव प्रतीत होता है पर देखना चाहिये कि वस्तुतः क्या है। अब यहां का रङ्ग देखिये भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण में लिखा है कि:—

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्म्मशशांस्तथा।
भक्ष्यान् पञ्च नखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः। मनु। ५, २८

"पञ्चनख वाले प्राणियों में से कुत्ते के समान शल्यक, गोह, गेंडा, कछुआ शशक येही भक्ष्य हैं तथा एक दांत वालों में ऊंट को छोड़ कर अन्य भक्ष्य हैं।

परन्तु जरा प्रायश्चित्ताध्याय में चल कर देखिये—

मार्जार नकुलौ हत्वा चाषं मंडूकमेव च।
श्वगोधोलूक काकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत्। मनु ११, १३१

अर्थात् बिल्ली, नेवला, झष, [मच्छी] मंडूक, कुत्ता, गोह, उल्लू, कौआ इन को मारने का पाप शूद्र की हत्या के बराबर है।

यहां गोधा के मारने का प्रायश्चित्त वही लिखा है जो शूद्र के मारने का। कैसा तमाशा है यहां न विकल्प सम्भव है न उत्सर्गापवाद भाव न परिसंख्या। विकल्प होता तो प्रायश्चित्त न होता फिर विरोध एक ही गोधा में इस लिये सामान्य विशेष भाव भी नहीं बन सकता। अतः उत्सर्गापवाद भाव वा परिसंख्या दोनों ही नहीं हो सकते। अतः सिद्ध हुआ कि भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण में तो विरोध है ही उसका परिहार नहीं हो सकता। अब देखना चाहिए कि उस विरोध के कारण क्या हैं। मैं पहिले ही निवेदन कर चुका हूं कि दो ही उत्तर हो सकते हैं एक मनु मूर्ख वा उन्मत्त था दूसरा प्रक्षेप। पहला तो न मुझे अभिमत है और न मैं समझता हूं कि पाठकवर्ग में किसी अन्य को होगा। अतः स्पष्ट है कि किसी धूर्त ने मांस के लालच से यह करतूतें कीं किन्तु वह "अभिप्राया न सिध्यन्ति तेनेदं वर्त्तते जगत्" इस नियमानुसार प्रायश्चित्ताध्याय में से गोधा का प्रायश्चित निकालना भूल गया।

इस के अतिरिक्त एक और कौतुक देखिए इस में

लिखा है कि ऊंट को छोड़ कर एक दांत की पंक्ति वालों को खाना चाहिए। गो रक्षक आर्य्य जाति ! गौ भी एक पंक्ति के दांत वाली है मनु ने प्रायश्चिताध्याय में गोघाति का घोर प्रायश्चित्त लिखा है और यहां यह हाल। अब आप कहेंगे कि गौ एक और अपवाद रूप सही, प्रथम तो यह बात ही ठीक नहीं क्योंकि ऊंट जो अत्यन्त अप्रधान अभक्ष्य है जिस का प्रायश्चित्त भी बहुत थोड़ा है उस का तो अपवाद कर दिया किन्तु गो प्रधान का नहीं किया। अस्तु यदि इस पक्ष को मान भी लें तो देखना चाहिए एकतोदन्त कौनसे हैं भैंस बकरी भेड़ इन सब का प्रायश्चित्त पृथक् हैं अब आप खोज कर कोई दूर का दुर्लभ एकतोदन्त लाएंगे उस के लिए मनु-महाराज ने पहिले ही कह दिया है कि "अज्ञातांश्च मृग द्विजान् भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान् (न भक्षयेत् ५.१७)" "जो अज्ञात मृग पक्षी हों उन की गणना भक्ष्य में हो तब भी न खाना चाहिए" एक और आनन्द देखिए २६ वें श्लोक में मनु महाराज कहते हैं कि मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने किन्तु इस प्रश्न का फैसला १८ वें में ही कर दिया।

अब एक बात और कही जा सकती है कि यज्ञ में

वध किए हुए यह भक्ष्य हैं इस का उत्तर यह है कि यज्ञ में पशुवध का प्रकरण पृथक् ही है। यह भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण उस से पृथक है। अतः स्पष्ट है कि यह सब प्रक्षेप है। अब भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण की विवेचना हो चुकी अब श्राद्ध प्रकरण की विवेचना करनी चाहिए।

३१ अध्याय में २६८-२७२ तक एक बड़ी मनोरञ्जक सूची दी है इस में बताया गया है किस पदार्थ से कितनी देर तक तृप्ति होती है इस में लिखा है कि बिलकुल लाल बकरे से पितरों की अनन्त काल तक तृप्ति होती है अब देखना चाहिए की अनन्त काल तक तृप्ति का क्या अर्थ है क्या पितर यदि कोई पितृ लोक मान भी लिया जाय तो उस में अनन्त काल तक रह सकते हैं क्या उन्हें कार्य्यफल कभी मिलेगा ही नहीं।

अब तीसरा प्रकरण यज्ञ प्रकरण है देखना चाहिये कि यज्ञ में पशुवध के विषय में मनु की क्या सम्मति है तथा यज्ञ में पशु वध किस सिद्धान्त पर अवलम्बित है। इस में सामान्य विशेष भाव तो देखने में आता है अतः परिसंख्या वा उत्सर्गापवाद भाव दोनों में से कोई होना चाहिए। आप कहेंगे कि उत्सर्गापवाद भाव है क्योंकि कहा है किः—

"नाकृत्वा प्राणिनांहिंसाम्मांस मुत्पद्यते कच्चित्" । इत्यादि किन्तु साथ ही कहा है "तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः" इत्यादि ॥

अतः यज्ञ में पशु हिंसा पुण्यदायक ही है पापकर नहीं परन्तु साथ ही यह नहीं समझ में आता कि यह क्या लिखा है कि: –

वर्षे वर्षे ऽश्वमेधेन यो यजेत शतंसमाः ।
मांसानिच न खादेद्य स्तयोः पुण्य फलं समम् ॥

अर्थात् जो १०० वर्ष तक प्रतिवर्ष अश्वमेध यज्ञ करे और वह जो केवल मांस न खाये इन दोनों का पुण्य फल बराबर है ।

कौन मूर्ख है जो यह देखकर अश्वमेध करेगा वा पशु याग करेगा अब आप कहेंगे कि परिसंख्या है किन्तु परिसंख्या भी नहीं हो सकती क्योंकि परिसंख्या का अर्थ है कि मनु महाराज ने कहा कि जो मांस खाने से रुक ही न सकें वह यज्ञ में इतने व्यय के पश्चात् थोड़ा सा खालें किंतु फिर नहीं इस से बहुत से प्राणी बचेंगे परन्तु इस अवस्था में यज्ञ लब्धमांस न खाने वाले की निन्दा नहीं हो सकती किन्तु पांचवें अध्याय का ३५ वां श्लोक है ।

नियुक्तस्तु यथा न्यायं योमांसं नात्ति मानव।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेक विंशतिम् ।

जो नियम पूर्वक प्राप्त हुआ मांस न खाय वह २१ जन्म तक पशुयोनि में जन्म लेता है ।

अब इस से स्पष्ट है कि न उत्सर्गापवाद भाव हो सकता है न परिसंख्या विकल्पका तो कहना ही क्या फिर प्रक्षेप के सिवा अब और क्या शेष रह गया अतः यही मानना चाहिए किसी मांस लोभी पाखण्डी गृध्र ने मनु, जैसे सच्छास्त्र को कलुषित किया ॥

अब इसमें आलम्भन शब्द का अर्थ हनन क्यों किया जाय प्रथम तो धात्वर्थ से ही इस का अर्थ 'लाना वा प्राप्त करना' निकलता है फिर 'आ' उपसर्ग लगने से अर्थ यह होना चाहिए कि कहीं से चारों ओर घूम घाम कर लाये और फिर उस पर चढ़ कर चतुष्पथ में जाकर यज्ञ करे और फिर गधे की खाल पहिन कर मनु कः—

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ।
पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ।

११ अ. २२ श्लो. ॥

जिस का ब्रह्मचर्य्य भङ्ग होजाय उसे पाक यज्ञ विधान

द्वारा रात्रि के समय काले गधे से निर्ऋति यज्ञ करना चाहिए

श्लोकानुसार प्रायश्चित्त करे और सात घरों तक अपना वर्णनकरता हुआ भिक्षा करे इस प्रकार उस का प्रायश्चित्त होगा अब बताइये क्यों आलम्भन का दूसरा अर्थ हो जब कि 'स्पर्श' अर्थ उपलब्ध भी होता है यदि यहाँ हनन अर्थ है तो "गामालभ्य विशुध्यति" इस में भी हनन अर्थ करना पड़ेगा ' यहां कुलूकभट्ट तक ने आलम्भन का अर्थ स्पर्श किया है यदि कहें कि गौ को न मारना चाहिए इस वाक्य से विरोध होता है तो गर्दभ के विषय का भी अहिंसा विधायक वाक्यों से तथा गर्दभहत्या प्रायश्चित से विरोध होता है। जरा विचार करतो देखिए अपराध तो करे ब्रह्मचारी और मरे विचारा गधा, हद्द हो गई मूर्खता की कभी एक और पाप करने से भी पाप शान्त हो सकता है क्यों न युक्तियुक्त दूसरे अर्थ को माने इसी प्रकार इस एक शब्द के कारण अनेक स्थानों पर अन्याय हुआ है उठिये और अपने ग्रन्थों को अन्याय से बचाइये।

इस के साथ ही आप पुराण आदि के सारे साहित्यको देखिये कि स्थान २ पर यही प्रकार है कि प्राचीन काल

में यज्ञ में पशु बध न होता था किन्तु पीछे से धूर्तों ने प्रचलित किया महाभारत—

श्रूयेते हि पुराकाले नृणां व्रीहिमयः पशुः ।
येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः ।
अनुशासनपर्व ११५ अ० ५६ श्लो०

अर्थात्—प्राचीन समय में पशु के स्थान यज्ञ में चावल ही उपर्युक्त होते थे। स्वर्ग की इच्छा वाले याजक लोग चावल आदि से ही यज्ञ करते थे।

सुरामत्स्या मधुमांसमासवं कृषरौदनम्।
धूर्त्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषुकल्पितम् ॥
शान्ति० २६४ । १ से १२ तक

सुरामद्यमधुमांस खिचड़ा भात सब धूर्तों ने चलाया है वेद विहित नहीं हैं।

इसी प्रकार इस स्मृति के मूलभूत "अवकीर्णीनैर्ऋतम्पशुमालभेत" इस वाक्य में भी यही आलम्भन शब्द काम कर रहा है।

इसी प्रकार अन्य स्थानों को भी विचार पूर्वक देखने से वास्तविक अर्थ पता लग सकता है किन्तु यह

प्रकृत नहीं हमारा सम्बन्ध इस समय केवल मनुस्मृति से है उसमें जहां २ पशुयाग है उस का उत्तर मैंने यथा शक्ति देदिया।

इसके अतिरिक्त एक और स्थान है जहां मांस की अनुज्ञा दीखती है आपद्धर्म रूप में वह यह है:—

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानाञ्च काम्यया
तथा विधिनियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये।

प्रोक्षित मांस खालेना चाहिये, ब्राह्मणों की इच्छा से मांस खालेना चाहिये विधियुक्त मांस खालेना चाहिये, और प्राणजाते हों तो मांस खालेना चाहिये, परन्तु जब इस के तीन चरण मानव सिद्धान्त विरूद्ध सिद्ध किये जा चुके तो चतुथ चरण कभी नहीं रह सकता। अगले दो पद्यों में भी यही बात कही है पर आगे लिखा है:—

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया
सजीवंश्चैवमृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते।

जो अहिंसक जीवों को अपने सुख की इच्छा से मारता है वह जीते जी और मरकर भी कभी सुख नहीं पाता।

इस पर अधिक कहना मैं उचित नहीं समझता क्योंकि इस विषय में मनु का वास्तविक सिद्धान्त क्या है यह मैं ठीक २ निश्चय नहीं करसका, हां इतना तो निश्चय है कि जो प्राणात्यय में भी इस धर्म को नहीं छोड़ता वह सर्व श्रेष्ठ मनुष्य है क्योंकि अहिंसा, सत्य, और इन्द्रिय-निग्रह को ही मनु महाराज ने प्रधान धर्म कहा है।

अब मांस विषयक निर्णय समाप्त हो चुका अब शायद कोई यह समझते हों कि मनु ने क्षत्रिय का धर्म युद्ध बताया है और यहां तो हिंसा की समाप्ति ही कर दी इस का उत्तर मैं यही देता हूं कि क्षत्रिय युद्ध में जो हिंसा करते हैं वह निन्दित नहीं। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि आजकल की न्याईं शान्ति से बैठे दूसरे के घर को उजाड़ने के लिये जो युद्ध न हो उसकी हिंसा ही क्षन्तव्य हो सकती है क्योंकि यदि कोई देश पराधीन होजाय तब तो वहां वालों में चोरी झूठ, पर द्रोह ईर्षा आदि अनेक मार्गों से हिंसा प्रवृत्त होगी। क्योंकि दूसरी जाति-विजित जाति पर शासन करने के लिये उसे पापों में फंसाये रखना अवश्य उचित समझेगी। साथ ही विजेता जाति के स्वार्थ साधन के कारण देश में दुर्भिक्ष पर दुर्भिक्ष होने उस से अनेक मनुष्यों का संहार

होगा "बुभुक्षितः किम्न करोतिपापम्" इस नियम के अनुसार लोग न जाने क्या करेंगे चारों ओर हाहाकार होगा अतएव इस महाहिंसा के सन्मुख युद्ध की हिंसा दुष्ट दलन के कारण पुण्य ही है। यह है मनुभगवान् के अहिंसा धर्म तथा क्षत्रिय धर्म की संगति। परन्तु हां युद्ध पर रक्षा के लिये वा आत्मरक्षा वा दुष्ट को दण्ड देने के लिये होना चाहिये न कि दूसरे को अकारण भूखा मारने के लिये। तात्पर्य यह है कि हमें यह न समझना चाहिये कि जो मनुष्य हिंसा वा रक्षा कर ही न सकता हो वा दूसरे के लिये धन आदि द्वारा बद्ध हो कर करता हो वह भी अहिंसक वा योद्धा है। अहिंसक वही है जो शक्ति रखते हुए हिंसा न करे उलटा रक्षा करे। रक्षा वही कर सकता है जो पहले अपनी रक्षा कर चुकता है। जिसकी स्वयं दूसरों को रक्षा करनी पड़े वह जड़ पाषाण या शिकारी कुत्ते आदि के समान है। जो दूसरे, पर रक्षा करे उसे आत्मरक्षा में तो स्वतन्त्र हो कर परोकार तथा दीन रक्षा में लगना चाहिये। धर्म देश, जाति, तथा सत्य के लिये खड्ग उठा कर रण में कूदन करने वाले अदम्यतेजक्षत्रिय को मैं बुरा नहीं कहता। वह यज्ञ के अग्नि के समान पवित्र तथा पापनाशन है। उन की खड्ग धारा में पाप धुल जाते हैं भूमि रुधिर

से अभिषिक्त होती है फिर उस पर स्वाधीनता तथा सत्य धर्म का दिव्यकुसुम उल्लसित हो कर मुसकुराता है शान्ति का राज्य होता हृदय नाच उठते हैं सच्चे क्षत्रिय का खड्ग तीर्थ है इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं। किन्तु हां "सर्वाइवल ऑफ् दि फिटेस्ट" के कलुषित सिद्धान्त के आधार पर हिंसा करना महापाप है। यह पापमय सिद्धान्त इस पुण्यभूमि में कभी प्रचलित नहीं हुआ। इसका उदय जङ्गली असभ्य सभ्यता का चोला पहिने हुई योरोपियन जातियों में हुवा और उनके साथ ही अस्त होगा। हमारा सिद्धान्त हैं "परार्थं जीवनं लोके" "सबल बनो और दुर्बल को हाथ देकर उठाओ।" पवित्र आर्य्यजाति की ध्वजा पर अंकित "माहिंस्यात् सर्वा भूतानि" लंका के युद्ध क्षेत्र में भारत के सच्चे वीर की धनुष्टंकार में भी यही मन्त्र प्रतिध्वनित हुआ। पुण्यश्लोक महर्षियों ने भी "देशकालजात्यनवच्छिन्नं सार्वभौममहाव्रतम् कह कर इसी का अभिनन्दन किया। शकविजेता की राजसभा में त्रिभुवनमनोमोहिनी मञ्जुलसंगीत पियूषवाहिनी बीणा से भी "न चारिहिंसा विजयश्च हस्ते" की आवाज आई। यमुना के तट पर करूणाकापूर प्लावित हुआ हिरणीदल उसी श्वेतरङ्ग में उसी श्वेतध्वनि में घुलगये बीणा की झनकार उठी

फूलहंस उठे मृदङ्ग गमक उठे वंसी की मीठी आवाज आई। 'आत्मवत्सर्व भूतेषुयः पश्यति स पण्डितः' उठो पर रक्षक बनो दीन मत बनो दीनबन्धु बनो तुम दूसरों की रक्षा करो तुम्हारी दूसरों को रक्षा न करनी पड़े यही वेद भगवान् का आदेश है महर्षियों का उपदेश है धर्मवीरो का आवेश है भक्तों का संदेश है।

शुभमस्तु

—:०:—